मौर्यकालीन उधोग–धंधों में मजदूरो, दासों एवं महिलाओं का योगदान

डॉ0 सुधाकर कुमार
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग
ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा

मौर्यकाल में वस्त्र उधोग पूर्ण विकसित था। सुत – व्यवसाय का अध्यक्ष सूताध्यक्ष कहलाता था। ऊर्ण, बल्क, रेशे, कपास, तुल रेशेदार पौधा, शणसन और क्षेम रेशम सुत कातने के लिए प्रयुक्त होते थे, सुत कतवाने का काम – विधवाओं, अंगहीन स्त्रियों, वैश्याओं की खलाओं, बुढ़ी दासियों और मंदिर की दासियों को नियुक्त किया जाता था।[1]

सूत की एकसारता, मोटाई, और मध्यमता की अच्छी तरह जांच करने के बाद उक्त महिलाओं की मजदुरी नियत की जाती थी । काम के अनुसार वेतन दिया जाता था। सुत का वजन अथवा लम्बाई को जानकर पुरस्कार रूप में अन्हें तेल आंवला और उबटन भी दिया जाता था। राज्य की ओर से यह हिदायत थी कि – जो स्त्रियां परदानसीन हो, जिनके पति परदेश गए हों, विधवा हो, जो आत्म निर्भर रहना चाहती हो, ऐसी स्त्रियों के संबंध में अध्यक्ष को चाहिए की वह दासियों द्वारा सूत भेजकर उनसे कतवाये और उनके साथ अच्छा व्यवहार करे।[2]

सूत्राध्यक्ष को यह भी निर्देश था कि रस्सी बांटकर जीविकोपार्जन करने वाले तथा चमड़ा का कार्य करने वाले कारीगरों से सम्पर्क बनाये रखे। उनसे वह गाय आदि बांधने के लिए रस्सी तथा हर तरह का चमड़े आदि का सामान बनवाता रहे। यूद्ध के लिए कवच का निर्माण एक पृथक कर्मान्त, कारखाने में शिल्प और कारू द्वारा होता था, जो उसका विशेषज्ञ होता था। सूती, ऊनी आदि वस्त्रों को रंगना भी एक महत्वपूर्ण उधोग था। रंगरेजो, कपड़ा रंगने वालो, को "रक्तक" कहा जाता था। धूलाई की दर से दूगीनी मजदूरी रकतकों को दी जाती थी।[3]

रजक, धोबी, को अर्थशास्त्र में – कारू, की संज्ञा दी गई है। रजक के लिए धुलाई की दर और कपड़ा फटने तथा बदले जाने पर दण्ड की दरें भी निर्धारित थी। उतकृष्टि कपड़ों की धूलाई एक पण, मध्यम के लिए आधा पण तथा माषाक और माषक दिये जाते थे।[4]

काष्ठ शिल्प बहुत हीं पुराना पेशा है इस कला को ऊचे दर्जे की प्राचीणता प्राप्त थी। काष्ठशिल्पी नाव, जहाज, तांगा, विविध प्रकार का रथ और यंत्र बनाने मे प्रवीण थे। वे विभिन्न प्रकार के पहलू का साज–समान भी बनाते थें। जंगलों से लकड़ी एकत्र करनेवाले मे कुप्याध्यक्ष को लकड़हारों ओर बढ़इयों का सहयोग लेना पड़ता था, जो स्त्री एवं दास वर्ग मे आते थे। "काष्ठ उधोग मौर्यकाल में मनुष्यों की आजिविका और पुरों की रक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक थे।[5] मेंगास्थनीज नक विभिन्न प्रकार के शिल्पियों का उल्लेख करते हुए लकड़हारों एवं बढ़इयों का भी वर्णन किया है जो वृक्ष काटने और उससे विविध प्रकार के सामान बनाते थे।[6]

लौह, ताम्र, त्रपु आदि धातुंओ से बरतन और हथियार बनाये जाते थे। इन व्यवसायों मे सुधार का योगदान अधिक होता था। कृषि संबंध उपकरणों जैसे– खनिज, फावड़ा, कुदाल, काण्डच्छेदन, कुल्हाड़ी आदि का निर्माण लुहार द्वारा किया जाता था।[7]

मौर्यकाल मे नट, नर्तक, बादक, गायक, कूशीलय, तालापचार, बाजा बजाने वाले आदि अपना व्यवसाय करके जीविकोपार्जन करते थे। ये सब गांवों और नगरों मे जाकर अपने – अपने शिल्पी का प्रदर्शन किया करते थे। इसके लिए प्रदर्शन कारियों को पांच पण राजकर कि रूप में अदा करना था। मौर्यकाल में विभिन्न प्रकार की रूपाजिवा थी, जो सेवा में रहते हुए स्वतंत्र रूप से पेशा करके अपना निर्वाह करती थी, उनके कार्य को नियंत्रित करने के लिए राज्य की ओर से गणिकाध्यक्ष की नियुक्ति होती थी।[8]

गणिका अध्यक्ष को राज्य की ओर से निर्देश मिला था कि "वह वेश्याओ के भोगधन" संभोग से प्राप्त धन, माता से मिला धन, दाय भम, संभोग के अतिरिक्त आमदनी, आय, और भावी – प्रभाव आकति, आदि को रजिस्टर में

दर्ज करता रहे और उन्हे अधिक खर्च से रोकता रहे। इसके अतिरिक्त अन्य उधोग और व्यवसाय थे – धातु उधोग, नमक उधोग और शराब उधोग भी थे, जिसमें स्त्री एवं दास वर्ग का योगदान था। पत्थरों पर नक्काशी करने वाले, शैलरूपकार, शंखों पर कारीगरी, करने वाले पंखकारों का भी व्यवसाय प्रचलित था। इसमें निम्न थे – कुम्हार, लुहार, बढ़ई, नाई, धोबी, सूचलकार, सूई बनाने वाले, दंतकार, हाथी दांत का काम करने वाले, सीसकार, शीशे का काम करने वाले, ठट्कार, पीतल कारीगर, मणिकार, जौहरी और शिल्पकार, मुत्रियां बनाने वाले, आदि को कारीगर वर्ग में रखा गया जो स्त्री एवं दास वर्ग की श्रेणी में पड़ता था। आर्थिक जीवन मे गांव का नाई और धोबी अपरिहार्य माना जाता था। जो नितांत स्त्री एवं दास वर्ग की श्रेणी मे था और अभी है। उपयूक्त सभी व्यवसाय कारो के व्यवसाय को निम्न व्यवसाय की श्रेणी मे रखा गया है।[9]

मौर्यकालीन पर राज्य का एकाधिकार था। "राज्य आर्थिक और औधोगिक कार्य कलापों मे सबसे बड़ा भागग्राही था। इसलिए कौटिल्य ने हर प्रकार के मजदूर के लिए मानक मजदूरी विहित कर दी थी। मजदूरी काल और कार्य के आधार पर या करार के अनुसार दी जाती थी । विवाद होने पर ढुलाई को मजदूरी तय करने के लिए जानकार लोगों की राय मानी जाती थी। यदि कामगार सौपा गया काम नियोजको के अभिष्ट समय और स्थान मे पूरा न कर पाता तो उसे कुछ भी न दिया जाता था। गोपालको और कृषि मजदूरों को निर्धारित मजदूरी दी जाती थी। शिल्पियों को उनके काम के अनुपात मे भोजन और मजदूरी दी जाती थी।[10]

साम्राज्य की सभी खानों एवं सभी खनिज साधनों पर राज्य का एकाधिकार होने से मौर्य साम्राज्य की सिथति काफी मजबूत हो गयी, मौर्यकालीन उधोग एवं साम्राज्य की आर्थिक स्थिति के बारे मं विद्वानों के विचारों से ऐसा प्रतित होता है कि आर्थिक विकास का कारण उधोग था, जिस उधोग मे स्त्री एवं दास वर्ग का योगदान था। स्त्री एवं दास वर्ग की आर्थिक स्थिति दयनीय अवश्य थी, लेकिन राज्य के आर्थिक विकास के लिए उन्होने उधोगों में काम करते हुए अपना खून और पसीना एक कर दिया।[11] सामान्यता व्यापार और उधोग का संबंध वैश्य वर्ग से माना जाता रहा है, लकिन व्यापार और उधोग की सफलता अप्रत्यक्ष रूप से स्त्री एवं दास वर्ग ही निर्भर करती है।[12]

मौर्ययुग में कृषि और उधोग के समान ही व्यापार काफी उन्नत और विकसित था, जिसका सीधा संबंध समाज के समृद्ध वर्ग वैश्य से था, लेकिन उसमें स्त्री एवं दास वर्ग का भी योगदान था। कच्चे माल से वस्तुओं का निर्माण श्रमिक वर्ग ही करते थे। कर्मान्तो, कारखाने, में वस्तुओं का निर्माण श्रमिक ही करते थे, तत्पश्चात द्वारा निर्मित वस्तुएं जो व्यापारी अपने–अपने कार्यक्षेत्र में लाते थे, उसके लिए एक नियम था। "यदि व्यापारी परस्पर एक होकर यह प्रयत्न करे कि कारूओ और शिल्पियों द्वारा तैयार किये गये माल को घटिया बताया जाये और इस प्रकार उन्हें पारश्रमिक लेते थें। उसके द्वारा तैयार किया गया माल कम कीमत पर बिके या उसका क्रय – विक्रय ही न हो सके, तो उन व्यापारियो पर एक हजार पण का जुर्माणा किया जाय यदि व्यापारी एक साथ मिलकर मण्य, विक्रय माल को रोक ले और इस ढ़ंग से उसकी कीमत बढ़ाने का यत्न करे तो भी उन्हें एक हजार पण जुर्माना का दण्ड दिया जाय। करू और शिल्पी के लिए भी दण्ड का विधान था– यदि लुहार, बढ़ई आदि कारीगर आदेश के अनुसार कार्य न करता, एक पण की जगह दो पण मजदूरी मांगता तो उसे एक हजार पण जुर्माणा देना पड़ता था।[13] वस्तुओं को तौलने या मापने के लिए वाटो का प्रयोग किया जाता था। इन वाटो का निर्माण शिल्पी ही करते थे, जो स्त्री एवं दास वर्ग के होते थे।[14]

मौर्ययुग मे आन्तरिक और वाह्य दोनो प्रकार का व्यापार बहुत उन्नत दशा में था। व्यापार जल और स्थल दोनों मार्गो द्वारा होता था। इन मार्गो पर राज्य कापूर्ण नियंत्रण होता था। जल मार्गो में नदी मार्ग भी बड़े प्रचलित थे। गंगा, यमुना, सरयू, सोन, गंडक, कृष्णा, कावेरी, तुंगभद्रा महानदी, गोदावरी, आदि का उपयोग व्यापार और नाव जल यातायात में कियां जाता था। नाव का संचालन मल्लाह करता था जो स्त्री एवं दास वर्ग का था।[15]" मल्लाह की नियुक्ति राज्य करता था जो राज्कीय मल्लाह कहलाते थे। जिसे निर्धारित नियम का पालन करना पड़ता था। पार उतारनेवाले राजकीय मल्लाह सीमा प्रदेशों में व्यापारियों से मार्ग का टैक्स अन्तपाल को दिया जाने वाला शुल्क भी अदा करता था। जो व्यापारी बिना मुहर के माल को लिकालते समय पकड़ा जाता उसका सारा माल जब्त कर लेता था। जो व्यक्ति अनियमित बोझा, असमय, और बिना धाट के ही पार उतरने की कोशिष करताउसका भी सारा माल जब्त कर लिया जाता था।[16]

आषढ़ी पूर्णिमा से लेकर कार्तिकी पूर्णिमा के एक सप्ताह बाद तक की अवधि के बीच नदियों में नौका कर लिया जाता था। सदा बहने वाली नदी मे हमेशा कर लगता था। प्रत्येक मल्लाह को यह निर्देश दिया गया था किवह प्रतिदिन के कार्य का विवरण और दैनिक भाग नौकाध्यक्ष को सूपुर्द कर दें।[17]

उपर्युक्त तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि राज्य के आर्थिक विकास मे मल्लाह जैसे स्त्री एवं दास वर्ग का भी महत्वपूर्ण योगदान था जो एक साधन से रूप में काम करता था। व्यापारियों से कर वसूलने और उसकी गलत नीतियों का पर्दाफास भी करता था।[18]

संदर्भ सूची :–

1. कृष्णा राव डा0 एम0 बी0, कौटिल्य अर्थशास्त्र का सर्वेक्षण, अनुवादक विश्वेश्वरययया जी रतन प्रकाशन मंदिर देहली – 1961, पृ0 सं0 – 120.
2. केन0 पी0 भी0, हिस्ट्री ऑफ द धर्मशास्त्र भौलयूम – 1 पृ0 सं0 – 18, कलकता – 1930.
3. चौधरी राधाकृष्ण, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास – जानकी प्रकाशन नई दिल्ली – 1986, पृ0 सं0 – 282.
4. कौटिल्य अर्थशास्त्र – अधिकरण – 3, अध्याय – 18, व्याख्याकार वाचस्पति गैरोला चौखमबा विधाभवन, वाराणसी – 1984.
5. कृष्ण राव डा0 एम0 वी0, कौटिल्य अर्थशास्त्र का सर्वेक्षण अनुवादक विश्वेश्वरैययया जी0 रतन प्रकाशन मंदिर देहली – 1961, पृ0 सं0 – 121.
6. कौटिल्य अर्थशास्त्र – अधिकरण – 4, अध्याय – 1, व्याख्याकार वाचस्पति गैरोला चौखमबा विधाभवन, वाराणसी – 1984.
7. झा डी0 एन0, प्राचीन भारत एक रूपरेखा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली – 1980,पृ0 सं0 – 73.
8. चौधरी राधाकृष्ण, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास – जानकी प्रकाशन नई दिल्ली – 1986, पृ0 सं0 – 280.
9. झा डी0 एन0, प्राचीन भारत एक रूपरेखा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली – 1980,पृ0 सं0 – 71.
10. चौधरी राधाकृष्ण, प्राचीन भारत का इतिहास – जानकी प्रकाशन नई दिल्ली – 1986, पृ0 सं0 – 281.
11. शैललेख – 1
12. चौधरी राधाकृष्ण, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास – जानकी प्रकाशन नई दिल्ली –7 1986, पृ0 सं0 – 280.
13. वणिजस्तु संवृतेषिृ कक्ष्यविभागेषु स्वदासीभि पेशलरूपा भिरागनतुनाम वास्तुव्यातां च आर्यरूपाणां मत्ससुप्तानां भावं विधुरू कौटिल्य अर्थशास्त्र अधिकरण – 2, अध्याय –25, कांगले आर0 पी0 द्वारा संपादित बम्बई – 1958.
14. विधालंकार डा0 सत्यकेतु, मौर्यसाम्राज्य का इतिहास – श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली – 1986, पृ0 सं0 – 373.
15. नाहर रतिभानु सिंह – प्राचीन भारत का राजनीति एवं सांस्कृतिक इतिहास किताब महल इलाहाबाद – 1988, पृ0 सं0 – 277.
16. चोपड़ा पी0 एन0 पुरी वी0 एन0 दास – एम0 एन0 – भारत का सामाजिक और आर्थिक इतिहास मैकमिलन इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली – 1985, पृ0 सं0 – 88.
17. कृष्ण राव डा0 एम0 वी0 कौटिल्य अर्थशास्त्र का सर्वेक्षण रतन प्रकाशन मंदिर देहली – 1961, पृ0 सं0 – 31.
18. विधालंकार डा0 सत्यकेतु, मौर्यसाम्राज्य का इतिहास – श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली – 1986, पृ0 सं0 – 191.